धर्माचरण का प्रमुख अंग : दान

धर्म का आचरण मनुष्य को सुखगति प्रदान करता है। दार्शनिक दृष्टि से देखा जाये तो धर्म की परिभाषा हैं– वस्तु स्वभावो धर्मः अर्थात् वस्तु का वास्तविक स्वरूप ही उसका धर्म है। जैसे पानी का धर्म है शीतलता, अग्नि का धर्म है–उष्णता। वैसे ही मानव का धर्म हैं मानवता। धर्म एक संजीवनी है। धर्म एक ऐसा तत्व हैं जो मानव को स्वर्ग तक पहुंचा देता है। धर्म का आचरण करने से किसी भी परिस्थिति पर विजय प्राप्त की जा सकती है। मानव जीवन में दान–पुण्य करना बहुत बड़ा धर्म है। दान किसे किया जाये यह भी विचारणीय है। जैसे वर्षा यदि सुखे स्थान पर होती है तो वर्षा लाभकारी होती है और उस वर्षा से सबको फायदा होता है। किन्तु यदि वर्षा उस स्थान पर हो जहां पहले से ही जल का भंडार हैं वहां पर वर्षा से कोई फायदा नहीं होता। इसी प्रकार दान भी सुपात्र को देना चाहिए, जिससे उनकी आवश्यकताएं पूर्ण हो। यदि दान ऐसे पात्र को दिया जाता हैं जहां पर पहले से ही धन–धान्य की संपन्नता है तो वहां पर दान का कोई महत्व नहीं है। धर्म कठिन से कठिन परिस्थिति वाले व्यक्ति के लिए संजीवनी है। मनुष्य को जीवन कृतार्थ करने के लिए दान पुण्य करना चाहिए। भारतीय ग्रंथों में दान की महिमा का वर्णन उत्कृष्ट रूप से किया गया है। दान कई प्रकार का होता है। दान विशेष रूप से धन का किया जाता है। जरूरतमंदों को उसकी आवश्यकता के अनुसार दान किया जाने चाहिए। समाज में बहुत से धन संपन्न व्यक्ति रहते है। धन का उपयोग एक मालिक के रूप में नहीं बल्कि ट्रस्ट के रूप मे होना चाहिए।

धन की तीन गतियां बतलायी गई है– दान, भोग और विनाश। सबसे अच्छी गति दान की दान देना है। जरूरतमंदों को उसकी आवश्यकता के अनुसार दान देना चाहिए। धन की दूसरी स्थिति भोग है यदि आदमी के पास धन–दोलत है तो उसका उपभोग करना चाहिए। त्यागपूर्वक किया गया उपभोग सबसे अच्छा उपभोग है। किसी के धन को शक्तिपूर्वक नहीं लेना चाहिए। धन का उपभोग करने से परिवार संतुष्ट रहता है। धार्मिक क्रियाओं में उत्सवों में तीर्थयात्रा में और दूसरों को देने में धन का उपयोग होना चाहिए। यदि धन का उपयोग नहीं किया जाता है तो तीसरी स्थिति धन की विनाश है। घर में इकट्ठा किया हुआ धन या तो

चोर चुरा ले जाता है या इनकम टैक्स के अधिकारी उसे सरकारी खजाने में जमा करा देते है। धन को उचित रीति से कमाना चाहिए। अनुचित रूप से अर्जित किया हुआ धन अधिक समय तक नहीं टिकता। धन का तो विनाश होता ही है उसी के साथ परिवार का भी विनाश हो जाता है। दान की महिमा से परलोक सुधरता है। हमारे देश में बहुत से दानशील व्यक्ति हुए है जिनका नाम आज आदर के साथ लिया जाता है। कर्ण महादानी था उसने अपने कवच कुण्डल को दान कर दिया था। भगवान विष्णु ने बामन रूप धारण कर राजा बलि से साढ़े तीन पग भूमि दान में याचना की थी तो बलि ने तीन पग भूमि देकर तीनों लोक को दे दिया और अंत में आधे पग में अपने शरीर का भी दान दे दिया। ऐसे महर्षि दधीचि ने अपने शरीर का दान देकर विश्व कल्याण किया था। आज ऐसे ऋषियों महर्षियों का नाम दान–दाताओं के श्रेणी में आदर के साथ लिया जाता है। यदि मनुष्य का दृष्टिकोण विधेयात्मक रहता है तो उसके द्वारा दिया हुआ दान सफल होता है और यदि निषेधात्मक होता है तो वह दान सफल नहीं होता है। यदि मनुष्य का दृष्टिकोण निषेधात्मक रहता है तो वह उसकी ऊर्जा को नष्ट कर देता है। क्रोध, मान, माया, लोभ, दुर्गुण, हिंसा आदि नकारात्मक वस्तुए है इनका सर्वथा त्याग करना चाहिए। मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिये धन की आवश्यकता होती है। धन को आवश्यक वस्तुओं पर खर्च करना चाहिए। जिससे धन का सदुपयोग हो सके। इसमें जगत कल्याण की भावना छिपी हुई है। विधेयात्मक दृष्टिकोण से शरीर की ऊर्जा ऊर्ध्वगामी होती है। मनुष्य में देवत्व के गुण आ जाते है और यदि दृष्टिकोण निषेधात्मक रहता है तो वह व्यक्ति अधोगामी होता है और उसकी प्रवृत्ति राक्षसी हो जाती है। रावण बहुत बड़ा ज्ञानी था लेकिन उसका चिंतन निषेधात्मक था, जिसके कारण संसार में उसकी अपकीर्ति हुई। मनुष्य का यदि ऐसा दृष्टिकोण रहता है तो उसका विनाश निश्चित है।

उपनिषदो में महर्षि याज्ञवल्क के दो पत्नियों का वर्णन है। एक का नाम था मैत्रेयी और दूसरे का नाम था कात्यायनी। महर्षि याज्ञवल्क ने एक दिन दोनों को बुलाकर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति का दान करना चाहा। इनमें से एक ने तो महर्षि की सम्पूर्ण सम्पत्ति प्राप्त कर ली। किन्तु एक ने कहा जिस सम्पत्ति को प्राप्त करने के पश्चात् मुझे अमरत्व प्राप्त हो तो मुझे वह सम्पत्ति प्रदान कीजिए। सम्पत्ति तो विनाशी है आज है कल नहीं रहेगी, किन्तु आत्मा अजर–अमर है

इसको प्राप्त कर लेने से मनुष्य को अभय दान मिल जाता है और वह सदैव के लिए अमर हो जाता है। अध्यात्म का उपदेश ही आत्मदान है। यही दान प्रशस्त दान कहलाता है। इसको प्राप्त करने के बाद मनुष्य के लिए कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रहता। गोस्वामी तुलसीदासजी ने दान की महिमा को बताते हुए कहा हैं कि **तुलसी पक्षिन के पिये सरवर घटे न नीर, दान किये धन ना घटे जो सहाय रघुवीर।** अर्थात् दान करने से धन कभी घटता नहीं, बल्कि दान यदि सद्भावना से किया जाता हैं तो दिन–दूनी रात–चौगुनी वृद्धि होती है।